अम्बेडकर की सामाजिक संरचना

अम्बेडकर की सामाजिक संरचना का स्वरूप

व्यक्ति

राज्य

राजनीतिक प्रजातंत्र

सामाजिक एकता

कानून

आर्थिक संरचना

अम्बेडकर का आदर्श समाज

धर्म

अम्बेडकर की सामाजिक संरचना

सामाजिक समानता और स्वतंत्रता का जो संघर्ष बुद्ध ने पच्चीस सौ वर्ष पूर्व छेड़ा था, कालान्तर में भले ही दब गया हो, किन्तु मरा नही था। आधुनिक युग में डॉक्टर अम्बेडकर नें उसे पुनर्जीवित किया। एक दलित नेता के रूप में अम्बेडकर को दलितों की सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक कठिनाइयों का प्रत्यक्ष और कटु अनुभव था। दलितों की मुक्ति उनके जीवन का लक्ष्य था। उनकी मान्यता थी कि जितनी जरूरत देश को आजादी की है उतनी ही जरूरत दलितों की सामाजिक मुक्ति की भी है। इसलिये वे कहते थे कि " राष्ट्र की आजादी के लिये संघर्ष करने के बजाय दलितों की मुक्ति के लिये लड़ना मैं ज्यादा पसन्द करूँगा।" [१]

अम्बेडकर का मानना था कि अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन का स्वरूप 'अस्पृश्य बनाम हिन्दू' न होकर 'हिन्दू सुधारक बनाम हिन्दू पुरातन पंथी' ऐसा हो। अस्पृश्योद्धार का प्रश्न सम्पूर्ण हिन्दू समाज का है इसके लिये सवर्ण और अस्पृश्य दोनों को ही मिलकर काम करना चाहिये। अम्बेडकर का कहना था कि मेरा ब्राह्मण जाति से कोई झगड़ा नही है, दूसरों को हीन समझने की उनकी वृत्ति से है। हरिजनों को भी चाहिये कि स्वयं अधिक योग्य बनने का प्रयास करें। इसके लिये अधिक परिश्रम करना सीखें। अपने मन को शुद्व बनायें तभी अपने बीच के मतभेद मिटा सकते हैं।

" यदि हम हिन्दूओं को एक जाति में संगठित करने में सफल होते हैं तो हम भारतीय राष्ट्र और खासकर हिन्दू समाज की सबसे बड़ी सेवा करेगें।" [२]

अम्बेडकर की मुख्य संकल्पना थी कि अस्पृश्यों और दलितों की निर्योग्यतायें परम्परात्मक हिन्दू सामाजिक संरचना की उपज है जिसका संपोषण वर्णाश्रम धर्म एवं पुनर्जन्म पर आधारित एक व्यवस्थित एवं सशक्त हिन्दू वैचारिकी, विशेष रूप से हिन्दू सामाजिक अधिदेश से होता रहा है। उनकी मान्यता थी कि, "दलित समस्या का निराकरण परम्परात्मक हिन्दू सामाजिक संरचना के मौलिक परिवर्तन बिना सम्भव नहीं है। साथ ही

परम्परात्मक ढाँचे को नया सामाजिक, आर्थिक आयाम तब तक प्रदान नहीं किया जा सकता जब तक कि परम्परात्मक हिन्दू विचार और अधिदेश को मूल रूप से समाप्त कर उसके स्थान पर एक युक्तिसंगत वैचारिकी का विकास नहीं किया जाता।''[३]

अम्बेडकर की समाज रचना

डॉ० अम्बेडकर ने सामाजिक संरचना के पंच फलकीय स्वरूप की कल्पना की है। उनकी पंचकोणीय समाज रचना के आधारभूत तत्व हैं - धर्म, व्यक्ति, समाज, राज्य और राज्य समाजवाद।

व्यक्ति

अम्बेडकर के अनुसार ''व्यक्ति सामाजिक संरचना की वह इकाई है, जो समाज सहित अन्य संरचनात्मक तत्वों का निर्माण करता है। ये तत्व आगे चलकर व्यक्ति की निरंतरता, भरणपोषण, सुरक्षा तथा विकास की आवश्यक व्यवस्था करते हैं।''[४] दूसरे शब्दों में व्यक्ति सामाजिक संरचना रूपी जाल की मकड़ी है, जो अपने चारों ओर आर्थिक, राजनैतिक, वैधानिक, धार्मिक आदि ताने-बाने बुनती है, उसे संशोधित और संवर्द्धित करती है और आगे चलकर उसी से जीवन और गति प्राप्त करती है।

अम्बेडकर का मानना था कि -- ''व्यक्ति समाज का दास नहीं वह इतिहास का निर्माता है। धर्म का आधार है। व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध दो तरफा है। व्यक्ति उस समाज, जिसमें वह रहता है, अपना अस्तित्व नहीं खोता। उसका जीवन स्वतंत्र है। उसकी एक निजी पहचान होती है। वह केवल समाज की सेवा के लिये पैदा नहीं होता, बल्कि आत्म-विकास के लिये भी कार्य करता है।''[५]

अम्बेडकर वैयक्तिक स्वतंत्रता के हामी थे। सामाजिक संरचना व्यक्ति के विकास में सहायक हो ऐसी उनकी मान्यता थी। अम्बेडकर का विचार था कि -- ''परम्परात्मक भारतीय समाज रचना धार्मिक तथा वर्ण व जातिगत नियमों के तहत व्यक्ति को आत्म-विकास के पर्याप्त अवसर प्रदान नहीं करती।''[६] ''समाज, धर्म और राज्य का आधारभूत केन्द्र व्यक्ति हैं। जो संरचना इस तथ्य की अवहेलना करती है वह उन्नतिशील

और टिकाऊ नहीं हो सकती। इसलिये समाज, धर्म, राज्य और अर्थ व्यवस्थाओं का प्रथम उद्देश्य व्यक्ति के विकास के लिये अनुकूल पृष्ठभूमि का निर्माण करना है।''[9]

राज्य

डॉ० अम्बेडकर राज्य की सर्वेसर्वा अवधारणा के विरुद्ध थे। उनके अनुसार राज्य, अपने आप में सर्वाधिकारी नहीं है। व्यक्ति राज्य का दास नहीं है। व्यक्ति और समाज के उद्देश्यों की प्राप्ति का राज्य एक साधन है न कि अपने आप में साध्य। ''राज्य एक संगठन है जो (अ) नागरिकों को जीवन, अधिकार, स्वतंत्रता, प्रसन्नता व भाषण तथा धर्मानुसरण की आजादी प्रदान करता है, (ब) विभिन्न वर्गों के बीच सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक असमानता को दूर करता है और (स) सभी प्रजाजनों को अभाव एवं भय से मुक्त करता है।''[6] राज्य को किसी एक वर्ग या समूह द्वारा दूसरे वर्ग या समूह के शोषण व उत्पीड़न से रक्षा करनी चाहिये। राज्य का कर्तव्य है कि ऐसे संविधान और सरकार की स्थापना करें, -- ''जिसका उद्देश्य स्वतंत्रता (विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता) समानता (कानून के समक्ष समानता और अवसर की समानता) तथा व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुरक्षित करने वाली बन्धुता की स्थापना हो।''[7] लेकिन वे राज्य की तुलना में व्यक्ति को अधिक महत्व देते थे। ''व्यक्ति ने राज्य का निर्माण किया है। बिना व्यक्ति राज्य का कोई अस्तित्व नहीं है।''[10]

राज्य का लक्ष्य व्यक्ति का विकास है। राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था का विकास करें, जिसमें व्यक्ति प्रसन्नतापूर्वक जीवन बिता सकें। राज्य सत्ता और व्यक्ति की स्वतंत्रता में सामंजस्य स्थापित करना चाहते थे, किन्तु, ''वैयक्तिक स्वतंत्रता से अम्बेडकर का कदापि यह आशय नहीं था कि व्यक्ति किसी वर्ग विशेष को लाभ पहुंचाने की दृष्टि से शासन करे और राज्य के हितों को नुकसान पहुंचाये।''[11]

राजनैतिक प्रजातंत्र

आरम्भ में अम्बेडकर भारत में प्रजातांत्रिक प्रणाली के विरुद्ध थे और ऐकिक शासन की स्थापना किये जाने पर जोर देते थे जो सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में प्रगतिशील दृष्टिकोण रखता हो। किन्तु आगे चलकर अम्बेडकर प्रजातंत्र के प्रबल पक्षधर बन गये। "प्रजातंत्र सरकार का वह स्वरूप है जिसके माध्यम से लोगों के सामाजिक-आर्थिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन उत्पन्न किये जाय। व्यक्ति के कार्यो और अधिकारों में राज्य का कम से कम हस्तक्षेप हो। नियमबद्धता की तुलना में सामाजिक उत्तरद्रायित्व अधिक महत्वपूर्ण है।"[१२] इस तरह अम्बेडकर ने सरकार के प्रजातांत्रिक प्रारूप का समर्थन तो किया, किन्तु प्रजातंत्र को अंतिम सत्य नहीं माना। प्रजातंत्र श्रेयस्कर इसलिये है क्योंकि वह व्यक्ति के विकास का पूर्ण अवसर प्रदान करता है। यह व्यक्ति को आवश्यक स्वतंत्रता, सम्मान एवं अधिकार प्रदान करता है। विचार की अभिव्यक्ति, पेशा चुनने की स्वतंत्रता तथा सम्पत्ति का अधिकार प्राकृतिक अधिकार है, जो व्यक्ति के स्वाभाविक विकास के लिये जरूरी है, "व्यक्ति को शैक्षिक, राजनैतिक, आर्थिक, श्रमिक एवं धार्मिक संस्थायें बनाने का पूर्ण अधिकार होना चाहिये, जिसके द्वारा वह अपनी समस्याओं को सरकार के सामने प्रभवकारी ढंग से रख सके।"[१३] उन्होंने संसदीय पद्धति को प्राथमिकता दी और भारत में एक मजबूत केन्द्रीय शासन स्थापित करना चाहते थे। फलस्वरूप, -- "राज्यों की तुलना में उन्होंने केन्द्र को अधिक व्यवहारिक अधिकार प्रदान किया।"[१४] सरकार की लोकतांत्रिक स्वरूप के साथ अम्बेडकर प्रशासनिक ढांचे को भी संवैधानिक स्वरूप दिये जाने के पक्ष में थे। परन्तु, "प्रशासन का स्वरूप संविधान के स्वरूप में मेल खाता होना चाहिये।"[१५]

अम्बेडकर ने संसदीय पद्धति को इसलिये प्राथमिकता दी क्योंकि इस प्रणाली में कोई भी सरकार संसद में दलितों को विश्वास में लिये बिना व्यवहारिक रूप से कार्य नहीं कर सकती। दलितों के प्रतिनिधित्व के सवाल पर आरम्भ में दलितों के लिये पृथक निर्वाचन की माँग करते थे। जिसमें दलितों के प्रतिनिधित्वों का चुनाव केवल दलितों के

मतों के आधार पर ही हो सकता था। जिसे दलित सामान्य प्रतिनिधियों के चुनाव में भी मत देने के अधिकार को बिना खोये ऐसा कर सकते थे। दलितों को आरक्षण व कतिपय विशेष सुविधाओं की व्यवस्था किये जाने के तहत अम्बेडकर ने, ''संयुक्त चुनाव प्रणाली को स्वीकार किया, किन्तु कार्यकारिणी में दलितों का प्रतिनिधित्व दलित सदस्यों के मतों के आधार पर हो। कार्यकारिणी का चुनाव बहुमत दल के नहीं बल्कि संसद एवं विधान सभाओं के सभी सदस्यों के मतों के आधार पर हो।''[१६]

सामाजिक एकता

अम्बेडकर राष्ट्रीय एकता के पक्षधर थे। इसलिये उन्होंने सभी नागरिकों के लिये समान दीवानी संहिता की सिफारिश की। यद्यपि डॉ० अम्बेडकर, ''भाषायी राज्यों के विराधी तो नहीं थे, किन्तु राज्यों के अलग-अलग राज्य भाषा के कट्टर विरोधी थे, क्योंकि ऐसा होने पर देश मध्यकाल की भांति छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो जायेगा। जो एक दूसरे से आपस में लड़ते रहेंगे। इसलिये वे इस बात पर बहुत बल देते थे कि सभी राज्यों की प्रशासनिक भाषा एक सी होनी चाहिये और वह हिन्दी हो। हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में स्थापित किये जाने के प्रबल समर्थक थे।''[१७]

राष्ट्रीय एकता, अम्बेडकर के अनुसार राजनीति का विषय नहीं है। बाह्य चीजों को जोड़ भर देने से उनमें एकता स्थापित नहीं हो जाती। ''बिना सामाजिक एकता के राजनैतिक एकता प्राप्त करना कठिन है।''[१८] लोकतंत्र की स्थापना के लिये सबसे पहली आवश्यकता है, ''समाज में विद्यमान असमानता को मिटाना अर्थात् सामाजिक प्रजातंत्र की स्थापना। जिसमें न कोई उत्पीड़क वर्ग हो और न कोई उत्पीड़ित। दूसरी, आवश्यकता है एक सशक्त विरोधी दल का होना, जो सरकार की गतिविधियों को उजागर कर सके। तीसरा, आवश्यक तत्व कानून और प्रशासन की दृष्टि में सभी नागरिकों को समानता। चौथा महत्वपूर्ण तत्व संवैधानिक नैतिकता का पालन करना। पॉचवॉ व अन्तिम तत्व समाज में लोकचेतना का होना। लोक चेतना का आशय प्रत्येक अन्याय के विरुद्ध आन्दोलन करना।''[१९]

कानून

सामाजिक संरचना के स्वरूप का निर्धारण सामाजिक एवं वैधानिक संहिताओं द्वारा होता है। सामाजिक संहितायें ही सामाजिक सम्बन्धों के प्रतिमान का वर्णन करती हैं। सामाजिक संरचना में परिवर्तन एवं संशोधन भी सामाजिक सम्बन्धों के गतिमान-प्रतिमान का वर्णन करती है। सामाजिक संरचना में परिवर्तन एवं संशोधन भी सामाजिक संहिताओं के माध्यम से ही होता है। सामाजिक शक्तियाँ यदि संरचना में मौलिक परिवर्तन को जन्म देती हैं तो व्युत्पन्न नई संरचना की समाज में स्थापना के लिये सामाजिक स्वीकृति और वैधता की जरूरत होती है। इसके लिये नयी सामाजिक एवं वैधानिक संहिता का विकास आवश्यक होता है।

कानून दो आधारों पर निर्मित होता है। "पहला, धर्म ग्रन्थों में प्रतिपादित पवित्र या ईश्वरीय नियम। जिसके बारे में यह विश्वास किया जाता है कि ये नियम ईश्वर द्वारा बनाये गये हैं। अथवा किसी व्यक्ति जिसकी संत, पैगम्बर, पुरोहितों अर्थात ईश्वर के प्रतिनिधि या भक्त के रूप में धार्मिक व सामाजिक प्रतिषठा होती है। ईश्वरीय नियमों में चूँकि परिवर्तन की सम्भावना नहीं होती इसलिये प्राचीन समाजों में जिनकी रचना ईश्वरीय नियमों पर आधारित थी, गतिमानता नहीं थी, उनमें ठहराव था। दूसरी, प्रकृति लौकिक होती है। ये व्यक्ति द्वारा निर्मित होते हैं। इसलिये ये परिवर्तनशील होते हैं। इस व्यवस्था में व्यक्ति को पर्याप्त स्वतंत्रता होती है। विकास के अवसर उपलब्ध होते हैं, किन्तु कानून द्वारा प्रदत्त अधिकारों का कोई मूल्य नहीं होता यदि समाज व्यक्ति को इन अधिकारों के स्वतंत्रतापूर्वक उपभोग की अनुमति नहीं देता।"[३०] इसलिये अम्बेडकर ने दलितों को विशेष सामाजिक स्वतंत्रता और अधिकारों की सुरक्षा की आवश्यक व्यवस्था किये जाने की सिफारिश की।

आर्थिक संरचना

अम्बेडकर के अनुसार, "जनतंत्र की आत्मा 'एक मनुष्य एक मूल्य' के सिद्धान्त में निहित है।"[२१] "किन्तु दुर्भाग्य से जनतंत्र ने 'एक मनुष्य एक वोट' के सिद्धान्त को अपनाया। यदि प्रजातंत्र को वास्तव में 'एक मनुष्य एक मूल्य' के सिद्धान्त की स्थापना करनी है तो संविधान के नियम न केवल राजनैतिक संरचना के आकार व स्वरूप को निश्चित करें, बल्कि उन्हें समाज की आर्थिक संरचना के स्वरूप व आकार को भी निश्चित करना चाहिये।"[२२] वे उत्पादन में निजी स्वामित्व के पक्षधर थे, "राज्य निजी उद्यम पर प्रत्येक द्वार बन्द किये बगैर समाज की आर्थिक व्यवस्था ऐसी करें जिससे अधिक से अधिक उत्पादन बढ़े और उत्पादित धन का समान वितरण हो।"[२३] उनकी संरचना का प्रारूप (अ) श्रम की स्वतंत्रता, (ब) राज्य समाजवाद, (स) बुद्ध का साम्यवाद, पर आधारित था। श्रमिकों को स्वतंत्रता होनी चाहिए। अम्बेडकर का कहना था कि "किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध काम करने पर मजबूत करना उसे गुलाम बनाने से कम नहीं है। हड़ताल श्रमिक का वह अधिकार है जिसे वह किसी भी शर्त पर काम किये जाने के विरुद्ध इस्तेमाल कर सकता है।"[२४]

ऐसा प्रजातंत्र जो श्रमिक वर्ग को गुलाम बनाता है वह प्रजातंत्र नहीं वरन प्रजातंत्र का मुखौटा है। आर्थिक संरचना में राज्य समाज वाद से अम्बेडकर का आशय "समाजवाद को एक कार्यक्रम के रूप में राज्य संविधान द्वारा लागू करना है न कि क्रियान्वयन के लिये उसे संसद, कार्यपालिका अथवा जनता की इच्छा पर छोड़ना है।"[२५] इसलिये आर्थिक शोषण से सुरक्षा प्रदान करने हेतु निम्नलिखित प्रस्ताव किये :-

"(अ) सभी मूलभूत उद्योगों अथवा जिन्हें इस रूप में घोषित किया जा सकता है राज्य स्वामित्व के अन्तर्गत हो और उन्हें राज्य द्वारा चलाया जाय।

(ब) मूलभूत उद्योग राज्य के ही अधीन हो।

(स) बीमा पर राज्य का एकाधिकार हो।

(द) कृषि राज्य उद्योग हो।

(य) राज्य को यह अधिकार हो कि वह उन उद्यमों, बीमा और कृषिभूमि को निजी व्यक्तियों से चाहें वे उसके स्वामी, आसामी अथवा बन्धककार हों उन्हें भूमि में उनके अधिकार के अनुसार निधम पत्र के रूप में क्षतिपूर्ति का भुगतान कर अपने अधिकार में ले सकें।''[२६]

अम्बेडकर के अनुसार बेहतर उत्पादन की दृष्टि से कृषि और उद्योग दोनों क्षेत्रों में पूंजी निवेश का दायित्व राज्य पर हो जिसमें राज्य बीमा योजना लागू की जा सकती है। कृषि उद्योग को सामूहिक कृषि के रूप में संचालित करने की संवैधानिक व्यवस्था की सिफारिश की। उनका कहना था कि चकबन्दी और (टेनेन्सी एक्ट) से दलितों को कोई लाभ पहुँचने वाला नहीं है। अत: 'समाजवाद' और 'वैयक्तिक स्वतंत्रता' दोनों की प्राप्ति अगर एक साथ करनी है तो यह तभी हो सकता है जबकि संसदीय जनतंत्र और राज्य समाजवाद संविधान की धाराओं में शामिल कर लिये जायें। अत:, ''संसदीय प्रजातंत्र तथा राज्य समाजवाद को संविधान की व्यवस्था द्वारा स्थापित किया जाय, जिससे बहुमत न तो उसे परिवर्तित कर सके न ही समाप्त कर सके। इस मार्ग का अनुसरण करके हम समाजवाद की स्थापना, संसदीय प्रजातंत्र की सुरक्षा एवं तानाशाही मनोवृत्तियों को समाप्त कर सकते हैं।''[२७] राज्य समाजवाद से मालिकों व पूंजीपतियों के हाथों श्रमिकों का शोषण बन्द हो जायेगा। संसदीय लोकतंत्र के राज्य में समाजवादी योजना के तहत एक ओर जनसाधारण की स्वतंत्रता की रक्षा की दृष्टि से सरकार की स्वेच्छाचारी नीति पर अंकुश लगता है तो दूसरी ओर आर्थिक संसाधनों पर आधिपत्य रखने वाले लोगों की स्वेच्छाचारी शक्ति को भी सीमित किया जाता है।

अम्बेडकर का कहना था कि ''संसदीय लोकतंत्र के साथ राज्य समाजवाद को वैधानिक रूप देकर ही हम तीनों उद्देश्यों, समाजवाद की स्थापना संसदीय जनतंत्र की सुरक्षा तथा तानाशाही का लोप की पूर्ति, कर सकते हैं।''[२८] वे समाजवादियों की इस प्रवृत्ति को नहीं मानते थे कि ''आर्थिक समस्या के हल होते ही सारी समस्यायें हल हो जायेगी।

यह गलत है। बिना मूलभूत सामाजिक सुधारों को लागू किये आर्थिक सुधारों को लागू करना कठिन होगा।''[29] उनका मानना था कि ''समाज को निरन्तर प्रयोग की अवस्था में होना चाहिये। समाज के बारे में कोई भी सिद्धान्त कलम की नोक पर स्थापित नहीं किया जा सकता। आवश्यकता है नये विचार और नये दृष्टिकोण की। दरिद्रता समाज में सदैव रही है, किन्तु दरिद्रता की वजह से मानव स्वतंत्रता की कुर्बानी नहीं की जा सकती। रूसी साम्यवाद खून खराबे पर आधारित है। जबकि बुद्ध का साम्यवाद रक्तहीन क्रान्ति पर आधारित है। आज जरूरत है बुद्ध के उपदेशों को राजनैतिक स्वरूप प्रदान करने की।''[30] उनका कहना था कि समाज में समानता की स्थापना जोर जबरदस्ती से नहीं की जा सकती। समाज का विकास व्यक्ति के स्वाभाविक विकास के बिना सम्भव नहीं है और व्यक्ति का स्वाभाविक विकास स्वतंत्रता के अभाव में सम्भव नहीं है। अत: ''बुद्ध का साम्यवाद ही वास्तविक साम्यवाद है, जो व्यक्ति को चिन्तन की स्वतंत्रता प्रदान करता है। साथ ही सम्पत्ति संग्रह की प्रवृत्ति पर नियंत्रण व्यक्ति को सामाजिक उत्तरदायित्व का बोध कराता है।''[31] संक्षेप में अम्बेडकर की दृष्टि में व्यक्ति और समाज की वास्तविक प्रगति प्रजातंत्र, राज्य समाजवाद और बुद्ध धर्म के मेल के बिना कठिन है।

इस तरह अम्बेडकर ने व्यक्ति को समाज, धर्म, अर्थ और राजनीति का लक्ष्य तो माना किन्तु उन्होंने समाज को व्यक्ति की अपरिहार्य आवश्यकता भी निरूपित किया। समाज के अभाव में व्यक्ति, व्यक्ति नहीं रह सकता। धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक होने के बावजूद मनुष्य अधिकांशत: एक सामाजिक प्राणी है। समाज के अभाव में वह धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं कर सकता। वह धर्म में आस्था रखें या न रखें, उसकी आवश्यकता अनुभव करें या न करें, वह राजनीति की भी आवश्यकता मानें या न मानें, लेकिन उसे समाज की आवश्यकता तो होगी। समाज के बिना मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता। व्यक्ति के आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति, यहाँ तक कि उसका अस्तित्व भी समाज के अभाव में सन्देहास्पद है। अर्थात सामाजिक संरचना में जब तक क्रान्तिकारी परिवर्तन उत्पन्न नहीं किये जाते तब तक आर्थिक और राजनैतिक

क्रान्ति का न तो कोई अर्थ होगा और न ही वे स्थायी होंगे। सम्पत्ति वितरण की समस्या हल कर लेने मात्र से सभी समस्यायें हल हो जायेगी, यह एक निरा भ्रान्ति है। सामाजिक सुधार की समस्या वास्तविक और मौलिक है। क्रान्ति के लिये जरूरी है कि समाज के मूल ढाँचे में परिवर्तन लाया जाय। संविधान सभा में बोलते हुये अम्बेडकर ने लोगों को सचेत किया कि, "राजनैतिक जीवन में तो हमने समानता स्थापित कर ली है किन्तु सामाजिक और आर्थिक जीवन में अभी भी असमानता बनी हुई है। यदि सामाजिक और आर्थिक विषमता को अविलम्ब दूर नहीं किया गया तो जो लोग इस असमानता के शिकार हैं वे वर्तमान राजनैतिक ढाँचे को उखाड़ फेंकेगे।"[३२] इसलिये "सामाजिक संरचना में परिवर्तन नहीं लाया जाता है तो भारत में प्रजातंत्र का भविष्य अंधकारमय है और यदि भारत में प्रजातंत्र काम नहीं करता तो इसका विकल्प बहुत कुछ साम्यवाद होगा।"[३३]

अम्बेडकर का आदर्श समाज

'मेरा आदर्श समाज' अम्बेडकर के शब्दों में "स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व पर आधारित होगा।..... किसी भी आदर्श समाज में इतनी गतिशीलता होनी चाहिये जिससे कोई भी वांछित परिवर्तन समाज के एक छोर से दूसरे छोर तक संचारित हो सके। ऐसे समाज के बहुविध हितों में सबका भाग होना चाहिये। सामाजिक जीवन में अबाध सम्पर्क के अनेक साधन व अवसर उपलब्ध रहने चाहिये। दूध-पानी के मिश्रण की तरह भाईचारे का यही वास्तविक रूप है और इसी का नाम लोकतंत्र है, क्योंकि लोकतंत्र केवल शासन पद्धति ही नहीं है। लोकतंत्र जीवनचर्या की एक रीति है तथा समाज के सम्मिलित अनुभवों के आदान-प्रदान का नाम है। इसमें आवश्यक है कि अपने साथियों के प्रति श्रद्धा व सम्मान का भाव हो।"[३४]

"दासता केवल कानूनी पराधीनता को नहीं कहा जाता। दासता में वह स्थिति भी सम्मिलित है जिसमें कुछ व्यक्तियों को दूसरे लोगों द्वारा निर्धारित व्यवहार एवं कर्तव्यों का पालन करने के लिये विवश होना पड़ता है। उदाहरणार्थ जाति प्रथा की तरह

ऐसे वर्ग होना सम्भव है जहाँ कुछ लोगों को अपनी इच्छा के विरुद्ध पेशे अपनाने पड़ते हैं।''[३५]

समता भी सामाजिक जीवन का सर्वमान्य सिद्धान्त है। यद्यपि सभी मनुष्य समान नहीं होते। व्यवहारिक रूप में असम्भव होते हुये भी समता एक नियामक सिद्धान्त है। अम्बेडकर का कहना है कि ''समाज में यदि अपने सदस्यों से अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करना चाहते हैं तो उसे सभी सदस्यों को आरम्भ से ही समान अवसर व सुविधायें उपलब्ध करानी चाहिये। इसका अर्थ यह हुआ कि जो लोग कमजोर व सुविधा विहीन हैं उन्हें आवश्यक रूप से सुविधा दी जानी चाहिये।''[३६] अर्थात अम्बेडकर अपने आदर्श समाज की अवधारणा में समान अवसर तथा प्राथमिकता युक्त समता पर बल देते हैं ताकि कोई मनुष्य जिसके पास साधन नहीं हैं मानव दौड़ में पीछे न रह जाय। साधनहीन व्यक्तियों की सहायता करना समता का ध्येय है।''[३७]

समता के औचित्य का अम्बेडकर के अनुसार राजनैतिक आधार भी हैं। ''एक राजनीतिक के लिये व्यवहार्य सिद्धान्त यह है कि वह सब मनुष्यों के साथ समान व्यवहार करे।''[३८]

सामाजिक संरचना की अम्बेडकर की परिकल्पना विस्तृत अर्थ में उनकी सामाजिक प्रजातंत्र की अवधारणा पर आधारित है। ''प्रजातंत्र मात्र सरकार का एक रूप नहीं, बल्कि साथ-साथ रहने का ढंग भी है। यह मानव जीवन का एक संगठित रूप है। इसकी जड़ें व्यक्तियों के सामाजिक सम्बन्धों में निहित है।''[३९] ''व्यक्तियों में विद्यमान मूलभूत समानता, एकता, सामाजिक और नैतिकता प्रजातंत्र के बुनियादी आधार है। परस्पर प्रेम, मैत्री और सहयोग भाव प्रजातंत्र के लिये आवश्यक है। ''प्रजातंत्र कुछ कुलीन अथवा गरीब लोगों की ही बात नहीं करता। यह जीवन में सबकी समान साझेदारी पर जोर देता है।''[४०]

''प्रजातंत्र का उद्देश्य जातिविहीन, वर्णविहीन तथा शोषण विहीन समाज की स्थापना करना है। भारत में प्रजातंत्र की स्थापना में समय लगेगा क्योंकि भारत की

भूमि भीतर से प्रजातांत्रिक नहीं है। भारत में राजनैतिक प्रजातंत्र तब तक स्थायी नहीं हो सकता जब तक कि उसकी बुनियाद सामाजिक प्रजातंत्र पर खड़ी नहीं की जाती।''[४१]

अम्बेडकर का कहना था कि ''सामाजिक प्रजातंत्र-स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धान्त पर आधारित है। समानता के अभाव में स्वतंत्रता समाज के कुछ लोगों को शेष लोगों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने देगी। बिना स्वतंत्रता के समानता व्यक्ति की सृजनात्मक प्रवृति को कुण्ठित कर देगी। और बिना भ्रातृत्व के स्वतंत्रता और समानता समाज में स्वाभाविक कार्य व्यवहार रूप में स्थापित नहीं हो सकेगी।''[४२] अम्बेडकर ऐसी समाज व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे, ''जिसमें सभी व्यक्तियों और वर्गों का स्वाभाविक सम्मिश्रण सम्भव हो सके। जिसका दूसरा नाम भ्रातृत्व एवं प्रजातंत्र है।''[४३]

लेकिन उनका दृढ़ विश्वास था कि ''समाज में भ्रातृत्व की स्थापना धर्म, वह भी बौद्ध धर्म के माध्यम से ही हो सकता है, क्योंकि बौद्ध धर्म का वास्तविक दर्शन स्वतंत्रता और समानता पर आधारित है। यह सामाजिक नैतिकता, प्रेम और करुणा की शिक्षा देता है जो भाईचारे के विकास के लिये आवश्यक है। अर्थात धर्म की स्थापना के द्वारा ही हम संविधान में वर्णित लक्ष्यों को प्राप्त कर सकते हैं।''[४४]

अम्बेडकर ने सामाजिक संरचना में दृढ़ता पर तो जोर दिया किन्तु संरचना में परिवर्तन को भी आवश्यक निरूपित किया। अम्बेडकर का कहना था कि -- ''किसी भी समाज में जिसमें सामाजिक चेतना है कभी असमानता को इस आधार पर नहीं माना कि एक बार जो निश्चित हो गया वह सदैव के लिये निश्चित हो गया। ऐसा दृष्टिकोण सभी प्रकार की नैतिकता का विरोधी है।.... नैतिक सिद्धान्त यह है कि जो कुछ भी दोषपूर्ण ढंग से निशिचित हुआ है कभी भी निश्चित न समझा जाय और उसे फिर से निश्चित किया जाय, कोई भी व्यक्ति स्थायी, अप्रगतिशील, दृढ़ता तथा सदैव अपरिवर्तनशील रहने वाले सम्बन्ध नहीं चाहता। सामाजिक दृढ़ता की आवश्यकता है, लेकिन परिवर्तन की कीमत के आधार पर नहीं जबकि परिवर्तन अनिवार्य हो..... इसी प्रकार कोई भी व्यक्ति कोरी

सामंजस्यता ही नहीं चाहता। सामंजस्यता की आवश्यकता है लेकिन सामाजिक न्याय की कीमत पर नहीं।''[५५]

धर्म

अम्बेडकर का मानना था कि -- ''धर्म जीवन और सामाजिक गतिविधियों के लिये जरूरी है।''[५६] धर्म अम्बेडकर का कहना था कि समाज के लिये अफीम नहीं है। ''वास्तविक धर्म समाज की नींव है और यह जीवन व समाज की प्रगति के लिये आवयश्यक है।''[५७] ''धर्म व्यक्ति में आशा का संचार करता है और उसे सक्रिय बनाता है।''[५८] किन्तु धर्म से अम्बेडकर का आशय ऐसे धर्म से है जो कल्याणकारी हो, तर्क व विवके संगत हो। ''मैं धर्म चाहता हूँ, धर्म के नाम पर पाखण्ड नहीं।''[५९]

''समाज को संगठित रखने के लिये आवश्यक है कि उसके पीछे कानून अथवा नैतिकता का अनुमोदन हो। इसलिये धर्म को नैतिकता के अर्थ मे सभी समाजों में समाज के नियामक सिद्धान्त के रूप में अवश्य रहना चाहिये।''[६०]

अम्बेडकर के अनुसार -- ''धर्म का स्वरूप समय के साथ बदलता रहा है। पहली अवस्था में धर्म आत्मा की मुक्ति का मार्ग था। दूसरी अवस्था में मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहारों के नियमन के नैतिक नियमों के रूप में आपसी भाईचारे को बनाये रखना था। तीसरी अवस्था मे लोगों ने उनकी पूजा करनी प्रारम्भ की जो उनके जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। अन्तिम अवस्था में लोगों ने उनकी पूजा करनी प्रारम्भ की जो आश्चर्यजनक करिश्मा दिखाते थे।''[६१]

अम्बेडकर के अनुसार ''धर्म की परख सामाजिक मापदण्ड के आधार पर की जानी चाहिये। अम्बेडकर धर्म को सामाजिक समृद्धि से जोड़ते थे।''[६२] अम्बेडकर ने धर्म को इस रूप में समझा कि -- ''वह सर्वप्रथम लोगों के जीवन में समृद्धि और विकास का अवसर प्रदान करे बाद में मोक्ष।''[६३]

अम्बेडकर धर्म को ऐसे सिद्धान्तो के रूप में चाहते थे जो '' सार्वभौमिक हो और सभी जातियों और सभी देशो में समान रूप से लागू हो सके।'' [६४]

अम्बेडकर ने सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक संरचनाओं की अंतिम विवेचना में धर्म को आधारभूत माना है।

उनकी मान्यता थी कि धर्म ही एक रास्ता है जिसके द्वारा हम स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा, समाजवाद और सामाजिक न्याय के लक्ष्यों की प्राप्ति कर सकेंगे। अम्बेडकर की सामाजिक संरचना का प्रारूप एक न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की खोज पर आधारित है जो व्यक्ति को स्वतंत्रता और आत्मविकास के पर्याप्त अवसर प्रदान कर सकें और जो सामाजिक समानता और भातृत्व पर आधारित हों। इस प्रकार सामाजिक संरचना की शक्ति का वास्तविक स्त्रोत धर्म और नैतिकता है।

अम्बेडकर के दलित आन्दोलन की मुख्य दो धारायें थी -(१) सामाजिक समानता के लिये संघर्ष तथा (२) सांस्कृतिक दासता से मुक्ति। पहले इन लक्ष्यों की प्राप्ति अम्बेडकर हिन्दू समाज में रहकर करना चाहते थे। जिसके लिये एक तरफ तो उनहोंने दलितों को मंदिर प्रवेश और अन्य नागरिक अधिकार दिये जाने के लिये संघर्ष किया। दूसरी तरफ वे इस बात पर बल देते थे कि या तो "हिन्दू शास्त्रों से उन अंशों को हटा दिया जाय जो सामाजिक बुराइयों को प्रश्रय देते है या एक सर्वथा नवीन हिन्दू ग्रन्थ का निर्माण किया जाय जो हिन्दू संस्कृति की मौलिक मान्यताओं पर आधारित हो किन्तु उसका सामाजिक दर्शन स्वतंत्रता, समानता एवं भातृत्व परक सर्वथा नया हो।"

गांधी जी भी हरिजन समस्या के लिये सामाजिक व्यवस्था को दोष देते थे। वे सामाजिक व्यवस्था में सुधार किये जाने की बात तो करते थे किन्तु परम्परात्मक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करने के पक्ष में नही थे। गांधीजी के सामाजिक-आर्थिक दर्शन का लक्ष्य था 'सर्वोदय समाज' की स्थापना। इसके विपरीत अम्बेडकर की मान्यता थी कि दलित समस्या परम्परात्मक सामाजिक व्यवस्था की अपरिहार्य परिणाम है। जब तक परम्रात्मक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन नहीं लाया जाता तब तक दलित समस्या भी हल नहीं हो सकती।

परिवर्तन और सामाजिक सुधार सम्बन्धी अवधारणा पर विश्वास नहीं करते थे और न ही लम्बे समय तक इन्तजार करने के पक्ष में थे। उनका कहना था कि "स्वतंत्रता और समानता के खोये हुए अधिकार याचना से नहीं बल्कि कठिन संघर्ष से प्राप्त होते है।"[५७] सामाजिक और आर्थिक अधिकार तब तक प्रभावकारी नहीं हो सकते जब तक कि दलितों को शासन में भागीदारी प्राप्त नहीं होती। परन्तु गांधीजी अस्पृश्यों की समस्या को शान्तिपूर्ण वैधानिक तरीके से हल करना चाहते थे। वे जानते थे कि अस्पृश्यता उन्मूलन और हरिजनोत्थान के गुरूत्तर कार्य को पूरा करने के लिये राष्ट्रव्यापी आन्दोलन और जनजागृति उत्पन्न करना बे नितान्त आवश्यक है। इसके साथ ही गांधी जी हरिजन समस्या का निवारण सत्य और अहिंसा पर आधारित क्रान्ति के माध्यम से करना चाहते थे। वे इसे समस्त हिन्दू समाज की समस्या मानते थे और उसका निदान हिन्दू समाज के दायरे के अर्न्तगत ही करना चाहते थे। उनकी स्पष्ट और निश्चित मान्यता थी कि अछूत हिन्दू समाज के अभिन्न अंग है।

अम्बेडकर का मानना था कि "धर्म मनुष्य के लिये है न कि मनुष्य धर्म के लिये। जो धर्म मनुष्य को मनुष्य नहीं समझता, शिक्षा और भौतिक समृद्धि से वंचित करता है, सार्वजनिक स्थानो से पानी लेने, मंदिरो में प्रवेश करने तथा अपने धर्म बंधुओं को छूने से मना करता है, वह धर्म नहीं । स्वराज्य से भारत को क्या मिलेगा! जैसे भारत के स्वराज्य जरूरी है वैसे ही अस्पृश्यों के लिये धर्म परिवर्तन उनका कहना था कि सामाजिक प्रजातंत्र , न्याय और समाजवाद की वास्तविक उपलब्धि तभी संभव है जबकि सभी दलित और समाज के सभी लोग बौद्ध धर्म में दीक्षित हो जाय।"[५७] किन्तु "धर्म परिवर्तन अस्पृश्यों की समस्या का कोई हल नहीं है। धर्म परिवर्तन से दलितों एवं अस्पृश्यों की स्थिति में न तो कोई सुधार आया है और नही समाज में समानता की स्थापना हो सकी है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि धर्म परिवर्तन सम्बन्धी अम्बेडकर का आन्दोलन जाति व्यवस्था की बुराइयों को समाप्त करने सम्बन्धी उनके प्रयासो की विफलता का परिणाम है।"[५८]

कुछ दलित नेता भी अम्बेडकर के धर्म परिवर्तन सम्बन्धी अवधारणा के विरूद्ध थे और गांधी जी के समाज सुधार एवं हरिजनोद्धार कार्यक्रम में उनका पूरा विश्वास था। एम० सी० राजा का कहना था कि "हिन्दुत्व हमारा धर्म है और यह हमारे लिये पवित्र है। हम इससे अलग नही होना चाहते। हम बेहतर मान्यता चाहते है। हमारा लक्ष्य अस्पृश्यता निवारण है और हमारा उद्देश्य हिन्दू समाज का अभिन्न अंग बनना है। उन्होंने अम्बेडकर के जवाब में जोर देकर कहा कि मै एक पेरियार के रूप में पैदा हुआ और एक पेरियार के रूप में ही मरूगाँ।"[५९]

दूसरे दलित विचारक देउरूक्खर का कहना था कि "धर्म परिवर्तन से कोई लाभ नहीं क्योंकि असमानता और भेदभाव किसी न किसी रूप में सभी धर्मो में विद्यमान है। कजरोल्कर ने इसे दुर्भायपूर्ण निरूपित किया। श्री निवासन् का कहना था कि 'इससे दलितों की संख्यात्मक शक्ति घट जायेगी जिसका लाभ आक्रान्त वर्ग को मिलेगा। इससे अधिक अच्छा होगा कि हम अधिक एकता और शक्ति के साथ अपने अधिकारों के लिये लड़े।"[६०]

गणेश अम्का जी गवई न कहा -"अम्बेडकर का धर्म परिवर्तन का निर्णय यह दर्शाता है कि उनमें दूर दृष्टि का अभाव है।"[६१]

जगजीवन राम ने इसे कायरतापूर्ण कदम निरूपित किया। उनकी मान्यता थी कि "इससे अस्पृश्यों की समस्या का समाधान सम्भव नहीं है क्योंकि जब तक दलित वर्ग के लोग हिन्दू समाज में हरिजन रहेंगे तब तक जहां भी जायेंगे यह अभिशाप उनके साथ जायेगा।"[६२] ए०बी० ठक्कर ने हरिजनों के प्रति असीम स्नेह को को लेकर अम्बेडकर की कड़ी आलोचना की। गांधी जी की प्रतिक्रिया थी कि "अम्बेडकर की धर्म परिवर्तन सम्बन्धी घोषणा दुर्भाग्यपूर्ण घटना है। विशेष रूप से तब जब कि अस्पृश्यता समाप्त प्राय है। धर्म का सम्बन्ध गांधी जी के अनुसार व्यक्ति की आत्मा से है न कि शरीर से।"[६३]

संदर्भ साहित्य

१. धनंजय कीर :- डॉ० अम्बेडकर: लाइफ एण्ड मिशन, पृ० ३२९

२. डॉ० डी० आर० जाटव :- डॉ० अम्बेडकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० १५४, ५५

३. डॉ० अम्बेडकर :- व्हाट पाथ साल्वेशन, १९७९ भगवान दास (संकलित) द स्पोक अम्बेडकर (अंक ४), लेख का लघु अंश विधायिनी १९८६ में प्रकाशित हुआ है।

४. एल० आर० बाली :- अम्बेडकरिज्म, पृ० १७-१९

५. अम्बेडकर :- उपरोक्त, १९७९, संकलन वही

६. अम्बेडकर :- 'स्टेट्स एण्ड साइनारिटीज', डॉ० बाबा साहेब अम्बेडकर्स राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज (खण्ड १)

७. धनंजय कीर :- वही

८. अम्बेडकर :- उपरोक्त

९. भारत का संविधान, १९५९ :- पृ० १०

१०. डब्लू० एन० कुबेर :- डॉ० अम्बेडकर: अ क्रिटिकल स्टडी, पृ० २९४

११. वही :- पृ० २९४-९५

१२. धनंजय कीर :- वही, पृ० ४४५

१३. डी० आर० जाटव :- द सोशल फिलॉसफी ऑफ डॉ० अम्बेडकर

१४. ४ नवम्बर १९८४ को संविधान का मसौदा पेश करते समय संसद में वक्तव्य, पृ० ८२, चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु (संकलित) बाबा साहेब के पन्द्रह व्याख्यान

१५. वही :- पृ० १०५

१६. डॉ० बाबा साहेब अम्बेडकर्स राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज (खण्ड १)

१७. एल० आर० बाली :- डॉ० अम्बेडकर और भारतीय संविधान, पृ० ११२

१८. एल० आर० बाली० :- उपरोक्त १९७४, पृ० १०५

१९. वही :- पृ० ७५

२०. अम्बेडकर :- ऑन द रोल ऑफ लॉ, १९७९, पृ० १८९-९२,

२१. जी० एस० लोखाण्डे :- भीमरावराम जी अम्बेडकर : अ स्टडी इन सोशल डेमोक्रेसी, पृ० २३

२२. धनंजय कीर :- वही, पृ० ३९२

२३. एल० आर० बाली :- वही, १९७४, पृ० ७२

२४. धनंजय कीर :- वही, पृ० ३१८

२५. अम्बेडकर :- स्टेट्स एण्ड साइनारिटीज, पृ० ३८१-४४९

२६. वही :- पृ० ३९६-९७

२७. निहाल सिंह :- युग प्रवर्तक डॉ० अम्बेडकर, उद्धृत 'अम्बेडकर दर्शन', पृ० ३९

२८. डॉ० आर० जी० सिंह :- वही, पृ० ५०-५१

२९. धनंजय कीर :- वही, पृ० ३९२

३०. वही :- पृ० ४९०

३१. जयप्रकाश नारायण :- समाजवाद, सर्वोदय और लोकतंत्र, पृ० ८

३२. धनंजय कीर :- वही, पृ० ३९१-९२

३३. वही :- पृ० ४१७

३४. अम्बेडकर :- जातिभेद का उच्छेद, पृ० ४६-४७

३५. वही :- पृ० ४७

३६. वही :- पृ० ४८

३७. एल० आर० बाली :- अम्बेडकरिज्म, पृ० ७०

३८. अम्बेडकर :- उपरोक्त, पृ० ४९

३९. धनंजय कीर :- वही, पृ० ४९०

४०. डी० आर० जाटव :- वही, १९६५

४१. धनंजय कीर :- वही, पृ० ४१७

४२. वही :- पृ० ४१५

४३. जी० एस० लोखाण्डे :- वही, पृ० २७-३०

४४. डॉ० आर० जी० सिंह :- वही, पृ० ५६

४५. एल० आर० बाली :- उपरोक्त, पृ० ७१

४६. धनंजय कीर :- वही, पृ० ७५

४७. वही :- पृ० ३०५

४८. वही :- पृ० ५०२

४९. वही :- पृ० ३०२

५०. अम्बेडकर :- बुद्धा एण्ड द फ्यूचर ऑफ हिज रेलिजन, पृ० ११-१२

५१. धनंजय कीर :- वही, पृ० ४५२

५२. डब्लू० एन० कुबेर :- वही, पृ० ७६

५३. धनंजय कीर :- वही, पृ० ९२

५४. डब्लू० एन० कुबेर :- वही, पृ० ७६

५५. अम्बेडकर :- वही, १९७४

५६. धनंजय कीर :- वही, पृ० ८२

५७. भगवान दास	:-	दस स्पोक अम्बेडकर (भाग ४) पृ० ११
५८. कुबेर	:-	वही
५९. एम० सी० राजा	:-	आई वाज बार्न एज ए पेरिआर एण्ड बिल डाई एज ए पेरिआर, पृ० २७७-८८
६०. धनंजय कीर	:-	वही, पृ० ५५६
६१. भगवान दास	:-	वही, पृ० १२
६२. ओ० एम० लिंच	:-	द पॉलिटिक्स ऑफ अनटचेबिलिटी,
६३. धनंजय कीर	:-	वही, पृ० २५४